Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
March 2024 5(3), 521–524

PHILOSOPHICAL IMPORTANCE OF YAGYA

यज्ञ का दार्शनिक महत्त्व

Dr. Neetanjali Khari [1]

[1] Department of Philosophy, Ramanujan College, University of Delhi, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i3.2024.2387

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The word Yagya is derived from Sanskrit root 'Yaj' with suffix 'Nad', which literally means worship of God, association and charity.1 This etymological meaning proves that the act by which inanimate and conscious Gods, inanimate objects and things are donated is called Yagya. The act by which the desired thing is achieved, the desire is fulfilled is the same act. On the basis of Maharishi Panini's explanation of Yagya, Pandit Budhdev Vidyalankar has defined Yagya and written that – the works done for the welfare of the community by becoming a part of the community are called Yagya.2 The commentator of Amarakosha has given the etymological meaning of the word Yagya that the Yagya which is performed, the means by which Yagya is performed is Yagya.

Hindi: यज्ञ शब्द संस्कृत की 'यज्' धातु से 'नङ्.' प्रत्यय से मिलकर बना है जिसका निष्पत्तिपरक अर्थ देवपूजा, संगतिकरण और दानात्मक है।1 इस व्युत्पत्तिपरक अर्थ से यह सिद्ध होता है कि जिस कर्म से जड़ चेतन देवों का, जड़ पदार्थों का तथा वस्तुओं का दान होता है , उसे यज्ञ कहते हैं। जिस कर्म द्वारा अभीष्ट सिद्ध होता है, ईष्ट की पूर्ति होती है वही कर्म होता है । महर्षि पाणिनि की यज्ञ विषयक व्याख्या के आधार पर पंडित बुद्धदेव विद्यालंकार ने यज्ञ को परिभाषित करते हुए लिखा है कि – समुदाय का अंग बनकर समुदाय के योगक्षेम के लिये जो कार्य किये जाते हैं वे यज्ञ कहलाते हैं।2 अमरकोश के टीकाकार ने यज्ञ शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ दिया है कि जो यजन किया जाय, जिसके द्वारा यजन हो वही यज्ञ है।

1. प्रस्तावना

महर्षि पाणिनि द्वारा प्रयुक्त देवपूजा, संगतिकरण एवं दान अर्थ व्यापक संदर्भों में है। देव शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं- वेद मंत्रों की संज्ञा देव है, वेद ज्ञान को प्रकाशित करने एवं सूर्य आदि ग्रहों का प्रकाशन करने के कारण ईश्वर को भी देव कहा जाता है । ब्राह्मण ग्रंथो में समादरणीय विद्वानों को भी देव शब्द से अभिहित किया जाता है । अत: वेद मंत्रों में ईश्वर एवं विज्ञ जनों के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुए उनका ज्ञान एवं ग्रहण देवपूजा कहलाती है ।

पाणिनि के अनुसार यज्ञ शब्द का दूसरा अर्थ संगतिकरण है,संगतिकरण वहाँ होता है जहाँ अत्यंत प्रीति एवं भक्ति के द्वारा एक साथ सत्पुरुषों की सत्संगति की आराधना हो । धन एवं विद्या एवं अन्य वस्तुओं को उचित व्यक्ति को दान देकर सदुपयोग करना यज्ञ है ।

इस प्रकार पाणिनि द्वारा प्रयुक्त यज्ञ शब्द के त्रिविध अर्थों का सार यह है कि जिसमें देवताओं की पूजा की जाती है, एक साथ मिलकर सद्भाव के साथ काम किया जाता है तथा निस्वार्थ भाव से दूसरों को दान दिया जाता है वह ही यज्ञ है ।

यज्ञ-मीमांसा में यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है कि जिस अनुष्ठान के द्वारा संपूर्ण विश्व का कल्याण हो, आध्यात्मिक ,आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापों का उन्मूलन जिससे सरल हो जाय उसे यज्ञ कहते हैं।[1]

संपूर्ण सृष्टि के क्रिया-कलाप यज्ञ रूपी धुरी के चारों ओर चल रहे हैं।[2] यज्ञ पूरी सृष्टि का आधार है ।

यज्ञ भारतीय मनीषियों द्वारा प्रदत्त ऐसी देन है जिसे सर्वाधिक फलदायी एवं संपूर्ण पर्यावरण केन्द्र के ठीक बने रहने का आधार माना जा सकता है ।

यज्ञ जीवन का एक सर्वोत्तम विज्ञान- सम्मत पद्धति है, केवल सभी कामनाओं की पूर्ति का मार्ग ही नहीं है, संपूर्ण वाड्.मय यज्ञ के महात्म्य से परिपूर्ण है। पुरुष-सूक्त में साक्षात परम् ब्रह्म परमात्मा को ही यज्ञ-स्वरूप बनाया गया है।[1] वैदिक साहित्य के बाद उपनिषदों में भी यज्ञों के महत्त्व का प्रतिपादन यत्र-तत्र विभिन्न संवादों में प्रदर्शित किया गया है।

यज्ञ के महत्त्वः

व्यक्ति अपने जीवन में जो भी शुभ-कार्य करता है वह यज्ञ है जो निस्पृह जीवन की साधना सिखाता है। यज्ञ द्वारा काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद, मात्सर्य व अहंकार सब नष्ट होकर मानसिक शुद्धि होती है । वेदों की एक सूक्ति है कि – 'स्वर्ग कामो यजेत' अर्थात सुख चाहने वाले को यज्ञ करना चाहिए ।

इस सूक्ति में जीवन का संपूर्ण सार तत्त्व समाहित है । सामूहिकता का प्रतीक यज्ञ है इसमें सब एक साथ संयुक्त होकर कार्य करते हैं जिससे सहभागिता एवं एकता की भावना प्रस्फुटित होती है ।

यज्ञ मनोवैज्ञानिक रूप से मानसिक रोगों, दुर्गुणों को नाश करके सद्भावों की वृद्धि करता है ।

व्यक्ति अपने जीवन त्रिविध ऋणों से घिरा होता है- पितृ-ऋण ,देव-ऋण और ऋषि-ऋण इन तीनों ऋणों से मुक्ति का माध्यम यज्ञ रूपी साधना ही है । यज्ञ ही वह कामधेनु है जो मनुष्य की सभी इच्छाओं की पूर्ति करता है ।

यजुर्वेद में एक प्रश्न पूछा गया है कि – संपूर्ण भुवन का केंद्—बिंदु क्या है जिस पर संपूर्ण ब्रह्माण्ड चल रहा है , जिस पर इसका अस्तित्व है?[1] इस प्रश्न का एक ही उत्तर है – यह वेदी पृथ्वी का अंत है ,यज्ञ की भावना त्यागपूर्वक भोग की भावना है , खिलाकर खाने की भावना है।[2]

स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद की भूमिका में वेद के मंत्रों की व्याख्या में यज्ञ को अत्यधिक महिमामण्डित किया है। जैसे एक प्रसंग में लिखते हैं- जब अग्नि में सुगंधि आदि पदार्थों का हवन होता है तभी वह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके तथा शरीर औषधि आदि की रक्षा करके अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है। उन शुद्ध पदार्थों के उपभोग से मनुष्य के विद्या, ज्ञान और बल में श्रीवृद्धि होती है।[1]

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का महत्त्व वेदों, उपनिषदों , शास्त्रों आदि में प्रमुखता से प्रतिपादित है , यज्ञ सृष्टि निर्माण का प्रामाणिक आधार है। यज्ञ द्वारा सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है । यज्ञ और प्रार्थना से त्रिविध पापों का नाश होता है।

स्वामी दयानन्द की व्याख्या के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यज्ञ के द्वारा वायु ,जल , औषधि , अन्न आदि की शुद्धि हो जाती है । जिससे उसका सेवन करने पर मेधावी , ज्ञानी आदि होकर सत्कर्म करते हैं और मोक्ष के अधिकारी होते हैं ।

यज्ञ के भेदः

यज्ञ प्रधानतया दो प्रकार के होते हैं- ज्ञान यज्ञ एवं द्रव्य यज्ञ। द्रव्य यज्ञ वहाँ होता हैं जहाँ देवता को लक्ष्य करके घृत आदि पदार्थों का अग्नि में होम किया जाता है । श्रुति में भी प्रतिपादित है कि द्रव्य, देवता और त्याग इन तीनों में ही यज्ञ के सभी स्वरूप समाहित हैं।[1]

द्रव्य यज्ञ स्मार्त एवं श्रौत भेद से विभिन्न प्रकार के होते हैं। श्रुति मंत्र एवं ब्राह्मण ग्रंथों में जिन यज्ञों का साक्षात वर्णन मिलता है वे श्रौत यज्ञ होते हैं। ऋषि- महर्षि स्मृतियों में जिन यज्ञों का वर्णन मिलता है वे स्मार्त यज्ञ होते हैं। ये दोनों यज्ञ नित्य नैमित्तिक काम्य भेद से तीन प्रकार के होते हैं जिनका अनुष्ठान प्रत्येक दिन होता है वे नित्य कर्म होते हैं जो किसी प्राकृतिक संयोग व उत्पात आदि के निमित्त से किये जाते हैं वे नैमित्तिक यज्ञ कहे जाते हैं। जो किसी कामना एवं इच्छापूर्ति के लिये किये जाते हैं वे काम्य कर्म कहे जाते हैं। ब्रह्मचर्य पूर्वक सभी वेद ब्राह्मण ग्रंथ एवं उपनिषद आदि शास्त्रों का अध्ययन करना ज्ञान यज्ञ है।

जहाँ पर आसन लगाकर स्वाहा आदि शब्दों को बोलकर किये किये जाते हैं वे होम, हवन या यज्ञ कहे जाते हैं

वेदो में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है , परन्तु मुख्य रूप से पाँच प्रकार के यज्ञ होते हैं –

1) अग्निहोत्र
2) दर्शपूर्णमास
3) चातुर्मास
4) पशुयाम
5) सोगयाग

इसके अतिरिक्त पाकयज्ञ ,हविर्यज्ञ एवं सोमयज्ञ भेदों का निरुपण भी मिलता है तथा साथ ही इनके भी सात-सात भेद होते हैं , इस प्रकार यज्ञीय भेदों का समन्वय तीन प्रकार की संस्थाओं में किया गया है –

1) हविर्यज्ञीय संस्था
2) सोमयज्ञीय संस्था

3) पाकयज्ञीय संस्था

कुछ प्रमुख यज्ञ सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया जा रहा है –

1.पाकयज्ञ- गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले सभी गृहस्थ प्रत्येक दिन पंचमहायज्ञ करते थे , इसी में प्रातः एवं सायंकाल के अग्निहोत्र यज्ञ की भी परिगणना की जाती है । वे ही पाकयज्ञ कहलाते हैं । इस अवसर पर जो होम किया जाता है उसमें चरू और पुरोडाश तथा यवागु की आहुति दी जाती थी।[1] ये यज्ञ सपत्नीक किये जाते थे। अतः इनको पत्नी संयाज भी कहा जाता है।[2] सुबह एवं शाम को किये जाने अग्निहोत्र यज्ञ भी पाक यज्ञों के अंग माने जाते थे। साथ ही दर्श और पौर्णमास यज्ञ भी इसी श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं। इस यज्ञ में मंत्रों के अंत में स्वाहा जोड़कर दक्षिणाग्नि में पकाये गये चावल,खीर,दुग्ध,घी की आहुतियाँ दी जाती हैं।

पंचमहायज्ञ – गृहस्थ व्यक्ति द्वारा प्रत्येक दिन जाने- अनजाने में कर्तव्य कर्मों को करते हुए कुछ स्थानों पर हिंसा हो जाती है जिससे व्यक्ति पाप का भी भागीदार बन जाता है।

ये हिंसा के स्थल पाँच प्रकार के मिलते हैं जिसे पंचसूना कहा जाता है। जहाँ पर पशुओं का वध हो उस स्थल को पंचसून कहते हैं।[1] पंचवदस्थल निम्न हैं – चक्की ,चुल्ली,झाड़ू, ओखल-मूसल तथा जल का घड़ा।[2] अपना जीविकोपार्जन करते समय व्यक्ति से इन स्थलों पर हिंसा हो जाती है जिससे मनुष्य पाप का भागी बन जाता है । इन पापों से निवृत्त होने तथा प्रायश्चित के लिये पंचसूनों के स्थान पर पंचमहायज्ञों का विधान किया गया है।[3] ये पाँच यज्ञ इस प्रकार हैं – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ,भूतयज्ञ, पितृयज्ञ अतिथि या नृयज्ञ।[4]

ब्रह्मयज्ञ – इस यज्ञ के अन्तर्गत व्यक्ति प्रत्येक दिन वेदों का स्वाध्याय करता है । इस स्वाध्याय के माध्यम से मनुष्य अपने ज्ञान की श्रीवृद्धि करता है जिससे संपूर्ण तत्त्वों को समझा जा सके तथा उसे स्थिर एवं सुदृढ़ बना सकें।

1) मनुस्मृति 3.68
2) मनुस्मृति 3.68 (कुल्लुक टीका)
3) मनुस्मृति 3.69
4) मनुस्मृति 3.70

देवयज्ञ- देवयज्ञ के अंतर्गत मनुष्य सुबह-शाम हवन एवं संध्या-वंदन आदि करता है जिसके माध्यम से गृहस्थ चराचर जगत को धारण एवं पोषण करता है। इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से दूर ले जाकर एक सुयोग्य सामाजिक प्राणी का निर्माण करना है ।

भूतयज्ञ – भूतयज्ञ में पशु-पक्षियों एवं प्राणियों के लिये गृह में जो प्रत्येक दिन अन्न बनाया जाता है उसकी बलि दी जाती है जिससे कि सभी प्राणियों में सहिष्णुता एवं उदारता बनी रहे। इसको वैश्वदेवयज्ञ भी कहते हैं ।

पितृयज्ञ- मृत पूर्वजों को तर्पण देना पितृयज्ञ है। पितृयज्ञ के माध्यम से पूर्वजों के कृत श्रेष्ठ कर्मों को याद करना तथा उनके द्वारा प्राप्तव्य शिक्षा का प्रयोग अपने जीवन में करना, तथा हमेशा उचित मार्ग पर चलने की प्रेरणा का भाव इसमें निहित है तथा इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पितृयज्ञ में बड़ों के प्रति सच्ची श्रद्धा आदर एवं सम्मान की भावना भी द्योतित होती है ।

अतिथियज्ञ- अतिथियज्ञ को ही नृयज्ञ कहते हैं इसमें मानव-मात्र के प्रति दया,करुणा,प्रेम एवं अनुकंपा की प्रकृति देखने को मिलती है। इसकी महत्ता इस बात से स्पष्ट होती है कि वैदिक धर्म में स्नातक अतिथि देवो भवः से अभिहित किया गया है। अतिथि को ही 'वैश्वानर अग्नि' इस नाम से भी अभिहित किया जाता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कह सकते हैं कि ये पंचमहायज्ञ

करने से व्यक्ति में कर्तव्य-पालन की प्रवृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। समस्त प्राणियों के प्रति दया एवं समर्पण का भाव जागृत होता है। इससे व्यक्ति में उदात्त नैतिक मूल्यों को स्थापित करने में सहायता मिलती है साथ ही त्याग एवं परोपकार आदि गुणों के उपस्थित होने से ये पंच महायज्ञ व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करते हैं साथ ही व्यक्ति को मानसिक शांति की अनुभूति भी कराते हैं । हवियों का परित्याग करने से अहंकार का भी नाश होता है तथा वातावरण की भी शुद्धि होती है, निष्काम सेवाभाव भी जागृत होता है तथा बौद्धिक चिन्तन में भी जागृति प्रदान करते हैं। चिन्तन—मनन की शक्ति व्यापक एवं उचित होती है। इसलिये मनु ने शक्ति के अनुसार अनुष्ठान करने पर जोर दिया है।[2]

जो इसे नहीं करता है उसे श्वास लेते हुए भी मृतप्राय घोषित किया है।[1] यज्ञ में महा शब्द के प्रयोग से ही महत्ता स्पष्ट हो रही है क्योंकि गृहस्थ व्यक्तियों द्वारा इन यज्ञों को करने से केवल पापादि शक्ति का क्षय ही नहीं होता अपितु सभी आश्रमों एवं चराचर जगत के सभी प्राणियों के महत्त्वपूर्ण दायित्वों का भी निर्वहन हो जाता है।

2.नवयज्ञ- जब नयी फसल तैयार होती थी तो प्रत्येक गृहस्थ उससे हवन करके ही नये अन्न को ग्रहण करता था क्योंकि पहले बिना यज्ञ किये नया अन्न ग्रहण करना निषिद्ध था। नये अन्नरूपी होम को ही नवयज्ञ कहा जाता है। धान से होम शरद की पूर्णिमा या अमावस्या को तथा यव से बसंत को नवयज्ञ किया जाता था। इसमें पायस तैयार करके इन्द्र और अग्नि को आहुति दी जाती थी।

3.दर्शपौर्णमासयज्ञ – जिस समय सूर्य और चन्द्रमा साथ होते हैं उसे दर्श तथा जिस काल में चन्द्रमा सब कलाओं से पूर्ण होता जाता है उसे पौर्णमास कहते हैं जिसके द्वारा यज्ञ किया जाय तथा जिसके द्वारा कोई इच्छा किया जाय उसे ईष्ट कहते हैं।[1]

4.चातुर्मास्ययज्ञ- चार-चार महीनों में किये जाने वाले यज्ञ चातुर्मास्ययज्ञ के रूप में वर्णित किये गये हैं। चतुर्मास यज्ञों के अनुष्ठान करने वाले को चतुर्मासक कहा जाता है।[1] इस दिन पायस या पृषातक की आहुति इन्द्र देवता को दी जाती है।[2]

5.अग्निहोत्र- इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है । अग्निहोत्र प्रज्ज्वलित करने के कारण इसका अर्थ ज्योति है, दूसरा अग्निहोत्र शब्द का अर्थ हवि के रूप में हुआ है।

अंत में हमें कह सकते हैं कि यज्ञ भारतीय परंपरा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है साथ ही यज्ञों का दार्शनिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान है, यज्ञ में पुरुषार्थ, ऋणत्रय, अतिथिदेवो भवः, निष्काम कर्म, योग-क्षेम, नित्य नैमित्तिक काम्य भेद से तीन प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है, जिनका अनुष्ठान प्रत्येक दिन होता है वे नित्य कर्म होते हैं जो किसी प्राकृतिक संयोग व उत्पात आदि के निमित्त से किये जाते हैं वे नैमित्तिक यज्ञ कहे जाते हैं। जो किसी कामना एवं इच्छापूर्ति के लिये किये जाते हैं वे काम्य कर्म कहे जाते हैं। ब्रह्मचर्य पूर्वक सभी वेद ब्राह्मण ग्रंथ एवं उपनिषद आदि शास्त्रों का अध्ययन करना ज्ञान यज्ञ है। इत्यादि अनेकों प्रकार के दार्शनिक का परम्परया संबंध यज्ञों से है।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

अष्टाध्यायी 3.3.90
शतपथ ब्राह्मण (वेद का राष्ट्रीय गीत) , पृष्ठ संख्या 41, प्रियव्रत वाचस्पति
अमरकोश 2.7.13 (रामाश्रयी टीका)
यज्ञ-मीमांसा ,पंडित वेणीराम गौड़ ,पृष्ठ-8
यजुर्वेद 26.62 ,अथर्ववेद 9.15.1
पुरुष-सूक्त 10.90
यजुर्वेद 23.61
यजुर्वेद 26.62
कात्यायन श्रौतसूत्र 1.2.2
कात्यायन श्रौतसूत्र 1.2.6,7
महाभाष्य 2.3.3.
महाभाष्य 4.1.33
मनुस्मृति 3.68
मनुस्मृति 3.68 (कुल्लुक टीका)
मनुस्मृति 3.69
मनुस्मृति 3.70
तैत्तरीय उपनिषद 1.11.2,3.10.1
मनुस्मृति 3.71
यजुर्वेद 13.3.95
गोभिल गृ.सू.प्र.पा. 1.1
द्राह्य गृ.सू. चतुर्थ प्रकरण 3.3.11